पाप का घड़ा

पाप का घड़ा

विष्णु प्रभाकर

राजपाल

मूल्य : पैंतीस रुपये (Rs. 35.00)

संस्करण : 2009 © विष्णु प्रभाकर
ISBN : 978-81-7028-475-8
PAAP KA GHARA (Short Stories)
by Vishnu Prabhakar

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110 006

website : www.rajpalpublishing.com
e-mail : mail@rajpalpublishing.com

दो शब्द

प्यारे बच्चो, ये कहानियाँ छोटे बच्चों के लिए नहीं है। बारह वर्ष और उससे अधिक आयु के बच्चों के लिए यानी किशोरों के लिए हैं। यह सभी कहानियाँ हमने प्राचीन साहित्य, धार्मिक और लोक साहित्य में से चुनकर पाँच संग्रहों में संकलित की हैं। एक कहानी ऐतिहासिक युग की भी है। ये सब कहानियाँ हमें हमारी संस्कृति से परिचित कराती हैं। मनुष्य को कैसे रहना चाहिए। उसके कर्तव्य क्या हैं, इन बातों का हमें अपने जीवन को जीने की राह दिखाता है। 'ब्राह्मण कौन है, हमें क्रोध नहीं करना चाहिए, और ज्ञान का सही अर्थ क्या है।' ऐसे सभी प्रश्नों के उत्तर इन कहानियों के द्वारा समझाए गए हैं। जब तुम इन्हें पढ़ोगे तो तुम्हें पता लगेगा।

कई कहानियाँ बड़ी अनोखी हैं। पढ़ना शुरू करोगे तो समझ नहीं पाओगे, लेकिन अन्त में कहानीकार जब उन वाक्यों का सही अर्थ बताता है तब पता लगता है कि कितनी सही बात कही गई है। जैसे एक कहानी है, 'धर्म का रहस्य।'

एक दिन एक परिवार में एक कम आयु के मुनि भिक्षा माँगने के लिए गए। उन्हें देखकर घर की बहू ने कहा ''मुनिवर अभी तो सबेरा है।''

मुनि ने उत्तर दिया, ''बहन मुझे काल का पता नहीं चलता।''

फिर मुनि ने पूछा, ''तुम्हारा पुत्र कितने वर्ष का है।''

बहू ने उत्तर दिया, ''सोलह वर्ष का।''

मुनि ने पूछा, ''तुम्हारे पति की आयु क्या है?''

बहू ने उत्तर दिया, ''आठ वर्ष।''

मुनि ने पूछा, ''और ससुर।''

बहू बोली, ''वह तो अभी पालने में ही झूल रहे हैं।''

और भी ऐसे ही प्रश्न पूछे, मुनि ने। बहू के ससुर सब कुछ सुन रहे थे। बड़ा क्रोध आया उन्हें घर की इज्जत ख़ाक में मिला रही है। जब मुनि भिक्षा लेकर चले गए तो वृद्ध पुरुष ने बहू को खूब डांटा। बहू ने शांत भाव से कहा, ''आप मुझे डाँटे यह आपको शोभा नहीं देता, पिताजी। मैं मुनि के प्रश्नों का उत्तर कैसे न देती। आप उनके गुरु के पास जाइए और उनसे कहिए कि वह मुनि फिर इधर न आवे।''

वृद्ध पुरुष को यह बात जँच गई। वह ऐसे मुनियों को डाँटना भी चाहते थे। इसलिए वह तुरन्त उसके गुरु के पास पहुँचे। उनसे मुनि की शिकायत की। गुरुजी ने उन मुनि को बुला भेजा। मुनि ने सब बातें सुनकर पूछा, ''गुरुजी भला इनसे पूछिए, मैंने कौन-सी अशोभनीय बातें कीं।''

वृद्ध बोले, ''मेरी पुत्रवधू ने इससे कहा, अभी तो सवेरा ही है। इसने उत्तर दिया, 'मैंने काल को नहीं जाना।' भला क्या यह बात सच हो सकती है।'

शिशु मुनि बोले, ''जी, बहन ने मुझसे पूछा था, ''आपने इस उभरती उम्र में संन्यास का कठोर मार्ग क्यों ग्रहण किया।'' मैंने उत्तर दिया, 'बहन काल अर्थात् मृत्यु का तो कोई भरोसा नहीं।' 'गुरुदेव इसमें तो कोई अशिष्ट बात नहीं है।'

वृद्ध ने कहा, ''अच्छा इसे भी छोड़िए, मेरी पुत्रवधू ने अपने पुत्र की आयु सोलह वर्ष, पति की आयु आठ वर्ष और मुझ वृद्ध पुरुष को पालने में झूलने वाला ही बताया था, भला यह बात सही कैसे हो सकती है?''

शिशु मुनि ने उत्तर दिया, ''गुरुदेव मैंने बहन से पूछा था कि तुम्हारे घर में कोई 'धर्मज्ञ' है या नहीं, इस पर उसने उत्तर दिया। 'मेरा पुत्र जन्म से ही धर्म-कर्म जानता है और उसकी आयु सोलह वर्ष है। मेरे पति पहले तो परम नास्तिक थे, किन्तु अब मेरे समझाने-बुझाने से धर्म के मर्म को समझने लगे हैं। और आठ वर्ष से वह भी धर्मनिष्ठ हैं, लेकिन मेरे ससुर आज भी धर्म की बात सुनना नहीं चाहते।'' यह वृद्ध

पुरुष धर्म का रहस्य जानते तो आपके पास आते ही नहीं।

"यह सुनकर वृद्ध पुरुष लज्जित हुए। वह अब धर्म के रहस्य और शक्ति को समझ गए थे।"

है ना यह कहानी पहेलियों जैसी, तो इन कहानियों के नाना रूप हैं। वह सब प्राचीन काल की संस्कृति पर प्रकाश डालती हैं।

इन कहानियों की पुस्तकों के साथ-साथ एक और पुस्तक है, "तपोवन की कहानियाँ, ये कहानियाँ दूसरी कहानियों से अलग हैं। यह प्राचीन काल के परम विद्वान महर्षियों की कहानियाँ हैं। उनके तप, त्याग और साधना पर प्रकाश डालती हैं। ये महर्षि आश्रमों और मठों में रहते थे। कुछ ऐसे आश्रम और मठ बन गए थे कि जो भी महर्षि उस गद्दी पर बैठता, वह उसी नाम से जाना जाता था। जैसे आज शंकराचार्य जी की गद्दी है। जो व्यक्ति उस पर बैठेगा, वह शंकराचार्य के नाम से ही जाना जाएगा। प्राचीन काल में भी ऐसी ही गद्दियाँ थीं या आश्रम थे। जैसे अगस्त मुनि, वशिष्ठ जी और ऋषि विश्वामित्र आदि। अगस्त मुनि का आश्रम हिमालय में ही माना जाता है, विन्ध्यांचल पर्वत पर भी, तमिल प्रदेश में भी। और यहाँ तक कि भारत के बाहर इण्डोनेशिया में भी। अब एक ही व्यक्ति प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक कैसे रह सकता है। वशिष्ठ जी और विश्वामित्रजी राजा हरिश्चंद्र के समय में भी हुए हैं और राम के समय में भी। तो यह शंकराचार्य के समान गद्दियाँ थीं, जो इन पर बैठता वह इसी नाम से पुकारा जाता था।

यह सब बातें तो तुम बड़े होकर ठीक-ठीक समझोगे, अभी तो तुम इन्हें पढ़ो और इनका अर्थ समझो। समय बदल गया है। कहानियाँ कहने का ढंग भी बदल गया है। जीवन के मूल्य भी बदल गए हैं, पर अपने प्राचीन साहित्य से परिचित होना भी आवश्यक है।

विष्णु प्रभाकर

23.1.2004

सूची

पाप का घड़ा	7
ब्रह्मतेज	12
महाराज चित्रकेतु का पुत्र-शोक	16
पतिव्रता का प्रभाव	21
राजा नृग का उद्धार	26
सुकर्मी मनुष्य	31
भोगलक्ष्मी	36

पाप का घड़ा

दो व्यक्ति पास-पड़ोस में रहते थे। उनमें एक धनवान था और दूसरा साधारण। धनवान व्यक्ति बहुत ही दयालु और परदुःखकातर व्यक्ति था। जनता उसका बड़ा आदर करती थी। लेकिन उसका पड़ोसी हमेशा उससे डाह रखता था। उसका धन उसे बहुत अखरता था और रात दिन वह इसी चिन्ता में रहता कि किसी तरह इस धनवान भले आदमी को नीचा दिखाऊँ।

एक दिन उसके घर में लड़के की शादी का प्रसंग आ गया। उसके पास पैसा नहीं था। वह अपने धनवान पड़ोसी के पास गया और अपने लड़के के लिए सोने के गहने माँगे। धनवान ने तुरन्त गहने दे दिए और उससे रुक्का लिखवा लिया। विवाह होने के बाद गहने लौटा देने थे। लेकिन उस व्यक्ति ने ऐसा नहीं किया। एक-दो बार धनवान व्यक्ति ने उसे याद दिलाया, लेकिन वह बिगड़ उठा। बोला, ''तुम्हारे गहने मैं कभी का लौटा चुका हूँ। क्या दो बार लेना चाहते हो ?

धनवान व्यक्ति चकित रह गया। बोला, ''तुमने मेरे गहने कब लौटाये ? तुम्हें झूठ नहीं बोलना चाहिए। यदि तुम गहने नहीं लौटाओगे तो मैं पंचायत बुलाऊँगा।''

ईर्ष्यालु व्यक्ति और भी क्रुद्ध हो उठा। कहने लगा, ''धन

के मद में तुम कुछ भी कर सकते हो, लेकिन अन्त में जीत गरीब की ही होती है। तुम्हारे पास धन का बल है तो मेरे पास जनता जनार्दन का। मैं पंचायत में जाने से नहीं डरता।''

धनवान् व्यक्ति उसकी ओर देखता रह गया। गहने भी गए और अब बदनामी का भी डर है। उसकी यह शंका सच थी, क्योंकि वह ईर्ष्यालु व्यक्ति जनता को भड़काने लगा था। हरेक से कहता, ''देखो, कैसा कलयुग आ गया। धनवान लोग गरीबों को निगल जाना चाहते हैं। मैंने इसके गहने कभी के लौटा दिए हैं, लेकिन यह मेरा अपमान करने पर तुला हुआ है।''

जनता में से कोई व्यक्ति बोल उठता, ''भाई, वह आदमी ऐसा है तो नहीं। वह तो हरेक की सहायता करता है। किसी का शोषण नहीं करता।''

ईर्ष्यालु व्यक्ति उत्तर देता, ''कभी करता होगा, लेकिन अब तो उसके लिए पैसा ही परमेश्वर है। अपनी प्रतिष्ठा, अपना यश सब कुछ खोकर वह पैसा कमाना चाहता है।''

कोई व्यक्ति उसकी बात मानता, कोई नहीं भी मानता। जब एक बात बार-बार कही जाती है तो उसका असर होता ही है। वे लोग सोचने लगे शायद यह गरीब व्यक्ति ठीक ही कह रहा हो। अब तो उस धनवान को बड़ी परेशानी होने लगी। आखिर उसने पंचायत से न्याय की प्रार्थना की। पंचायत ने एक दिन उन दोनों को बुला भेजा और सारी बात सुनकर ईर्ष्यालु व्यक्ति से कहा, ''तुम अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिए जलता हुआ लोहे का गोला हाथ में लेने को तैयार हो ?''

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, ''मैं तो यही चाहता हूँ कि मेरे साथ न्याय हो। मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ।''

पंचायत ने एक दिन निश्चित कर दिया। उस दिन सारा

समाज वहाँ इकट्ठा हुआ, लेकिन वह ईर्ष्यालु व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। वह कुछ देर बाद आया। उसके हाथ में अनाज का एक घड़ा था और वह काँप रहा था। उसने विलम्ब से आने के लिए क्षमा माँगी और फिर झुँझलाकर कहा, "मैंने इसके गहने लौटा दिये थे। यदि मेरी बात सत्य न हो तो पंच जो गरम लोहे का गोला मेरे हाथ पर रखें तो उससे मेरे हाथ जल जाएँ और यदि मैं सच्चा हूँ तो मुझे कुछ भी न हो।"

यह कहकर उसने अनाज से भरा घड़ा सेठ के हाथ में देते हुए कहा, "ज़रा दो मिनट के लिए इसे संभालो। परीक्षा के बाद मैं वापस ले लूँगा।"

सेठ ने वह घड़ा ले लिया और पंचों ने आग से जलता हुआ लाल-लाल लोहे का गोला उस ईर्ष्यालु व्यक्ति के हाथों पर रख दिया। जनता ने चकित होकर देखा, उसका हाथ तनिक भी नहीं जला। उसकी सत्यता प्रमाणित हो गई। जनता धनवान व्यक्ति को दुत्कारने लगी। धनवान व्यक्ति जैसे काँप उठा। हतप्रभ-सा वह उस घटना को देखता ही रह गया। गहने भी गए और यह अपमान भी सहना पड़ा। इससे बढ़कर दुर्घटना और क्या होगी। उसके मन में यह पूर्ण विश्वास था कि गहने उसे नहीं मिले हैं, अतः उसी की जीत होगी। लेकिन अग्नि से जलता हुआ लोहे का गोला क्यों ठंडा हो गया ?"

उसकी आत्मा में जब यह भयंकर तूफान उठा तो उसकी संज्ञा जैसे खोने लगी और उसके हाथ में जो अनाज का घड़ा था, वह एकाएक नीचे गिर पड़ा। गिरते ही वह टूट गया। अनाज चारों ओर बिखर गया और लोगों ने आश्चर्य से देखा कि उस अनाज के बीच में सेठ के सभी गहने छिपे हुए थे। अब तो जैसे पाप का घड़ा फूट गया। हाथ न जलने का रहस्य भी सामने

आ गया, क्योंकि जिस समय आग का गोला हाथ पर रखा गया था, उस समय वह गहने सेठ को लौटा चुका था। पंच और जनता इस षड्यन्त्र को भाँप गए और उस ईर्ष्यालु व्यक्ति की जो हालत हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पाप का घड़ा इसी तरह फूटता है।

ब्रह्मतेज

इक्ष्वाकु-कुल में एक बहुत ही प्रभावशाली राजा हुए हैं। वह पराक्रमी भी थे और विद्वान भी। उनके राज्य में सब प्रकार के सुख थे। सब कहीं शान्ति विराजती थी। उनके पुरोहित वृश अपनी विद्या के लिए संसार भर में प्रख्यात थे। वह सौम्य भी थे और उग्र भी। साम-गान में वह जितने कुशल थे, युद्ध-भूमि में वह उतने ही प्रतापी थे। रथ चलाने में तो वह इतने चतुर थे कि एक बार स्वयं महाराज ने उनसे प्रार्थना की, ''महर्षि ! इस बार की युद्ध-यात्रा में आपको मेरा सारथि बनना होगा। यह मेरी हार्दिक इच्छा है।''

महर्षि बोले, 'राजन, आपने पुरोहित का मूल्य खूब समझा है। वह राष्ट्र की प्रतिष्ठा है। इसलिए मैं आपका सारथि बनूँगा।''

महाराज गद्गद् हो उठे और जिस समय उनकी विजय-यात्रा आरम्भ हुई तो ऐसा लगा मानो ब्रह्म-तेज क्षात्र-बल के साथ संसार के कल्याण साधन के लिए विजय-यात्रा पर निकला है।

इस यात्रा में महाराज को अभूतपूर्व विजय मिली। चारों दिशाओं की विजय-यात्रा को समाप्त कर जब वह राजधानी की ओर लौटे तो उनके हर्ष का पारावार न था। प्रजा ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। आगे-आगे विजयी इक्ष्वाकुओं की

विशाल सेना की रण-दुन्दुभि बज रही थी। पीछे एक रथ पर आसीन थे राजा और उनके सारथि महर्षि वृश। उस दृश्य को देखने के लिए सभी नर-नारी अपना-अपना काम छोड़कर सड़क पर आ गए थे। भीड़ इतनी अधिक थी कि लोग एक-दूसरे पर टूटे पड़ते थे।

ऐसे समय में पूरी सावधानी रखने पर भी अचानक एक चंचल ब्राह्मण बालक राजा के रथ के नीचे आ गया। उसके प्राणों की रक्षा न हो सकी। रंग में भंग हो गया। दर्शक क्षुब्ध हो उठे। राजा और पुरोहित दोनों के हृदय भी विषाद से भर आए। लेकिन इस अपराध का दोष किस पर था, इसका निर्णय बहुत कठिन हो गया। राजा का कहना था कि मेरे रथ के घोड़ों की लगाम महर्षि के हाथ में थी। रथ का वेग धीमा करना या तेज करना उनके अधिकार की बात थी, मैं तो उनके हाथ की कठपुतली था। इसीलिए इस हत्या के दोषी वही हैं।

महर्षि का तर्क था, "रथ के स्वामी आप हैं। आप रथी हैं और मैं सारथि हूँ। मेरे हाथ में बागडोर ज़रूर है लेकिन फल के अधिकारी आप ही हैं। आप विजय-यात्रा के शुभ फलों के अधिकारी हैं तो अशुभ फलों के भी। जैसे मैं विजय का अधिकारी नहीं हूँ, वैसे ही मैं हत्या का भी अधिकारी नहीं हूँ। मैं तटस्थ हूँ और तटस्थ व्यक्ति का कोई अपराध नहीं होता।"

इक्ष्वाकुओं ने दोनों पक्षों की बातें सुनीं। स्वार्थ और परार्थ में भयंकर द्वन्द्व मच उठा। परार्थ बुद्धि कहती, "वृश का कहना ठीक है। सारथि सेवक मात्र है, वह संचालक है, फलभागी नहीं।"

स्वार्थ बुद्धि कहती, "महाराज हमारे पूज्य स्वामी हैं। उन पर दोषारोपण करना न्यायसंगत न होगा।"

इस प्रकार बहुत देर तक वे विवेचन करते रहे। परन्तु अन्त में स्वार्थ की जय हुई और उन्होंने स्वामी राजा को निर्दोष तथा सेवक पुरोहित को दोषी ठहराया। महर्षि ने निरपराधी होते हुए भी इस निर्णय के सामने सिर झुका लिया। लेकिन साथ ही अपने मन्त्र के बल से उन्होंने उस बालक को फिर से जीवन-दान दिया। इसके बाद वह इक्ष्वाकु जनपद को छोड़ कर चले गए।

उनके जाते ही जैसे जनपद का तेज चला गया हो। अग्नि या तो जलती ही नहीं थी जलती भी थी तो उसमें तेज नहीं रह गया था। लोगों ने नाना प्रकार के उपाय किए, पर अग्नि में ज्वाला उत्पन्न नहीं हुई। राज्य भर में हाहाकार मच उठा। न तो गृहस्थी के घर में भोजन बन पाता था, न यज्ञशालाओं में यज्ञ हो पाते थे। धीरे-धीरे प्रजा राजा के विरोध में उठने लगी। उन्होंने कहना शुरू किया, "बालक की हत्या का दोष पुरोहित का नहीं था, राजा का था। राजा ने पुरोहित को दोषी ठहराकर

जो पाप किया है, उसी के कारण अग्नि का तेज समाप्त हो गया है।''

राजा ने सब कुछ सुना। वह विचलित हो उठे। मन्त्रियों से सलाह की। मन्त्रियों ने प्रजा की बात का समर्थन किया। राजा को सिर झुकाना पड़ा और उन्होंने महर्षि वृश को खोजने के लिए आदमी भेजे। वह आए। राजा ने उनके चरणों में सिर रख दिया। महर्षि उग्र थे तो सौम्य भी थे। उन्होंने प्रजा पर आई इस आपत्ति को देखा, तो क्षण भर में उनका कोप दया में परिणत हो गया और वह अग्नि के तेज के नष्ट होने का कारण खोजने लगे। अपनी सूक्ष्म दृष्टि से उन्होंने देखा, राजा की एक रानी पिशाचिनी है। पुरोहित के चले जाने पर उसी ने तेज को अपने पास छिपा रखा है।

वह राजा को लेकर महल में पहुँचे और उस तेज को संबोधित कर नाना प्रकार से स्तुति करने लगे। उन्होंने ऋग्वेद के मन्त्रों का उच्चारण किया। देखते-देखते अग्निदेव की ज्वाला धधक उठी। पिशाचिनी भस्म हो गई और घर-घर में अग्नि का प्रादुर्भाव हो गया। फिर से रसोई में भोजन बनने लगा। यज्ञशाला में होम की ज्वाला जल उठी ? रात्रि का अंधकार दूर करने के लिए दीपक प्रज्वलित हो उठे। राजा सहित सब लोग समझ गए कि ब्रह्म-तेज के सहयोग से ही क्षात्र-बल जगत का कल्याण कर सकता है। ''आध्यात्मिक शक्ति के अभाव में शारीरिक शक्ति एकदम व्यर्थ है। वह कोई काम पूर्ण नहीं कर सकती।'' इस प्रतीक कथा का यही अर्थ है।

महाराज चित्रकेतु का पुत्र-शोक

प्राचीन काल में शूरसेन देश में महाराज चित्रकेतु राज्य करते थे। वे सभी गुणों और ऐश्वर्य से सम्पन्न थे। किन्तु उनके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए उन्हें सदा चिन्ता रहती थी। संयोगवश एक दिन अंगिरा ऋषि वहाँ आए और चिन्ता का कारण जानकर बोले, "मैं आपके लिए यज्ञ करूँगा।"

तब उन्होंने त्वष्टा देवता के योग्य चरु तैयार कर उससे यज्ञ किया और उसका प्रसाद रानी को देकर राजा से कहा, "हे राजन ! तुम्हारी पत्नी से तुम्हें हर्ष और शोक दोनों ही देने वाला पुत्र उत्पन्न होगा।"

समय आने पर महारानी के सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। चारों ओर आनन्द छा गया। राजा ने बालक के उचित संस्कार कराए और ब्राह्मणों को खूब दान दिया। महाराज अब अधिकतर उसी रानी के पास रहने लगे जिसको पुत्र उत्पन्न हुआ था। यह देखकर दूसरी रानियाँ ईर्ष्या से जलने लगीं। उनकी स्थिति दासी से भी बदतर हो गई थी और बुद्धि भी भ्रष्ट हो गई थी। इसलिए एक दिन छुपकर उन्होंने नन्हें से राजकुमार को विष दे दिया।

सहसा धाय के रोने की आवाज़ सुन कर माँ अपने पुत्र के शयन-गृह में पहुँची तो देखा बच्चा मरा हुआ पड़ा है। वह

मूर्छित होकर वहीं गिर पड़ी। समाचार पाकर राजा चित्रकेतु पागलों की तरह दौड़ते हुए वहाँ आए। उनकी आँखों के आगे अंधेरा छा गया। राजा-रानी दोनों इस तरह विलाप करने लगे कि सारे राज-कर्मचारी रुदन कर उठे। देश भर में दुःख के बादल छा गए।

महर्षि अंगिरा और देवर्षि नारद यह समाचार पाकर पहुँचे और तरह-तरह की वैराग्यपूर्ण उक्तियाँ सुनाकर उन्हें समझाने लगे। उन्होंने कहा, "राजन ! जिसके लिए आप शोक कर रहे हैं वह बालक इस जन्म और पूर्व के जन्म में तुम्हारा कौन था। उसके तुम कौन थे ? आगे तुम्हारा क्या सम्बन्ध रहेगा, कौन जानता है ? जल के वेग से बालू के कण जैसे एक दूसरे से जुड़ते और बिछुड़ते रहते हैं वैसे ही काल के प्रवाह में प्राणियों का मिलन और बिछोह होता रहता है। भगवान समस्त प्राणियों के अधिपति हैं। यह संसार उन्हीं की माया से मिथ्या होता हुआ भी सत्य सा प्रतीत होता है।"

इस प्रकार महर्षि अंगिरा ने राजा चित्रकेतु को नाना प्रकार से उपदेश दिया परन्तु उसका शोक दूर नहीं हुआ। तब देवर्षि नारद ने मरे हुए राजकुमार के जीव को प्रत्यक्ष बुलाकर कहा, "देखो, तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे वियोग से अत्यन्त शोकाकुल हैं। तुम अपने शरीर में फिर आ जाओ।"

जीव ने उत्तर दिया, "देवर्षि ! मैं अपने कर्मों के अनुसार कितनी योनियों में, कितने जन्मों से भटक रहा हूँ। ये लोग किस जन्म में मेरे माता-पिता हुए। विभिन्न जन्मों में सभी एक-दूसरे के भाई-बन्धु, शत्रु-मित्र होते रहते हैं। जब तक जिसका जिससे सम्बन्ध रहता है तभी तक ममता भी रहती है। आत्मा नित्य, अविनाशी, सूक्ष्म और स्वयं प्रकाश है, इसका न

कोई प्रिय है न अप्रिय, न अपना न पराया।''

यह कहकर वह जीव चला गया। उसी के साथ राजा का स्नेह बन्धन भी कट गया। उसका शोक भी जाता रहा। तब देवर्षि नारद के कहने पर उसने मन्त्रोपनिषद् ग्रहण किया। विधिपूर्वक अनुष्ठान करने पर उन्हें विद्याधरों का अखण्ड आधिपत्य प्राप्त हो गया। कुछ दिन और अनुष्ठान करने पर उसे भगवान के दर्शन हुए और उसके बचे-खुचे पाप नष्ट हो गए। भगवान ने कहा, ''राजन ! देवर्षि नारद ने तुम्हें जिस विद्या का उपदेश दिया है उससे और मेरे दर्शन से तुम सिद्धि प्राप्त कर चुके हो।''

भगवान ने चित्रकेतु को और भी उपदेश दिया और फिर वह चले गए। एक दिन चित्रकेतु ने विमान पर घूमते हुए शंकर-पार्वती को देखा और पार्वती से कहा, ''शिव तो समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ हैं फिर वह भरी सभा में अपनी पत्नी के साथ साधारण पुरुषों की तरह क्यों बैठे हैं।''

चित्रकेतु की यह बात सुनकर शंकर तो हँस पड़े लेकिन पार्वती को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसे शाप देते हुए कहा, ''जिन भगवान शंकर का बड़े-बड़े महर्षि और देवर्षि निरन्तर ध्यान करते हैं उनका तुमने इस प्रकार तिरस्कार किया है, इसलिए हे दुर्मते, तू पापमय असुर योनि में चला जा।''

यह शाप सुनकर चित्रकेतु ने सिर झुकाकर पार्वती को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हुए कहा, ''माता, मैं आपका शाप स्वीकार करता हूँ। प्रारब्ध के अनुसार जीव अज्ञान से मोहान्ध होता है और इसी कारण सुख-दुःख भोगता रहता है। सुख-दुःख देने वाला न तो अपनी आत्मा है, न दूसरा है। जो अज्ञानी है वे ही अपने को सुख-दुःख का कर्ता मानते हैं। आपको जो मेरी बात अनुचित मालूम हुई उसके लिए क्षमा करें।''

यह कहकर चित्रकेतु वहाँ से चला गया। भगवान ने पार्वती से कहा, ''प्रिये ! जो लोग भगवान के शरणागत हैं उन्हें स्वर्ग, मोक्ष और नरक में समान भाव से भगवान के दर्शन होते हैं। जीवों को देह के संयोग होने के राग या द्वेष नहीं करते। यह चित्रकेतु भगवान के अनुचर और समदर्शी हैं इसलिए हे पार्वती, तुम्हें इसके व्यवहार पर चकित नहीं होना चाहिए।''

यह सुनकर पार्वती शान्त हो गई। चित्रकेतु चाहते तो उन्हें शाप दे सकते थे पर उन्होंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि वह साधु पुरुष थे। शाप के अनुसार उन्हें दानव योनि में जाना पड़ा और वृत्रासुर के रूप में उन्होंने जन्म लिया। इस योनि में आने पर भी उनका हृदय ज्ञान और भक्ति से भरा रहा और उस जन्म में इन्द्र ने छल से उनको मारा। फिर भी वह मुक्ति को प्राप्त हुए।

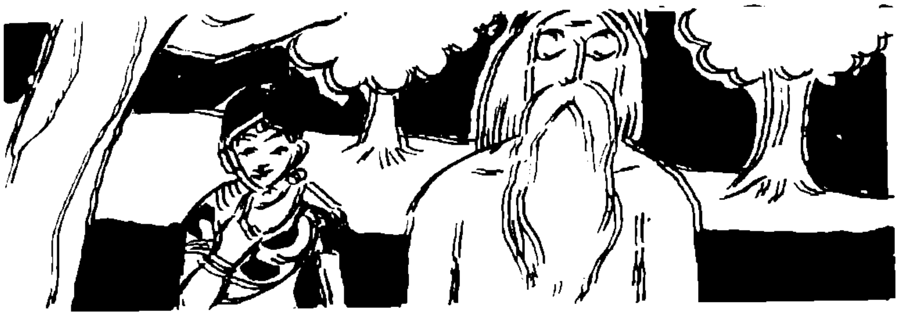

पतिव्रता का प्रभाव

महर्षि भृगु अपने समय के महान तपस्वी थे। वह ब्रह्मदेव के पुत्र थे और उनके पुत्र का नाम था च्यवन। च्यवन भी परम तपस्वी थे। पुष्कर क्षेत्र में उन्होंने घोर तपस्या आरम्भ की। युग बीत गए। उनका शरीर धूल से भर गया। दीमकों के ढेर के भीतर उनकी देह छिपने लगी। उनकी गरदन में साँप लटकने लगे। उनकी जटाओं में पक्षियों ने घोंसले बना लिये। दूर से देखने पर ऐसा लगता था कि वहाँ कोई दीमकों का टीला है।

एक बार महाराज शर्यात मृगया की कामना से पुष्कर क्षेत्र में आए। उनके साथ उनका परिवार भी था। उसमें उनकी तरुणी कन्या सुकन्या भी थी। वह जैसी सुन्दर थी वैसी ही बुद्धिमती भी थी। पिता की बड़ी लाड़ली थी। वन की शोभा निरखते हुए वह उस ओर जा निकली, जहाँ च्यवन ऋषि कठोर तपस्या कर रहे थे। राजा को यह बात मालूम थी और उन्होंने आदेश दिया था कि कोई व्यक्ति उनकी तपस्या में विघ्न न डाले। इसलिए कोई भी उधर नहीं जाता था।

लेकिन सुकन्या तो राजा की लाड़ली थी। ऋषि को इस अवस्था में देखकर उसके मन में बहुत कौतुहल हुआ। उसके साथ के बालकों ने महर्षि को बूढ़ा और निकम्मा जानकर बहुत

पेरशान किया। ऋषि क्रुद्ध हो उठे। राजा ने यह सुना तो तुरन्त वहाँ आए। उन्होंने तपोवृद्ध और वयोवृद्ध च्यवन ऋषि को देखा तो सिर झुकाकर प्रणाम किया और बालकों के अपराध की क्षमा माँगी। तपस्वी का हृदय कोमल था। उसने एक शर्त पर राजा को क्षमा कर दिया और वह शर्त यह थी कि सुकन्या का विवाह उनके साथ कर दिया जाए।

राजा यह सुनकर बहुत दुःखी हुए। लेकिन यह प्रस्ताव उन्हें स्वीकार करना ही पड़ा। सुकन्या स्वयं भी इसके लिए प्रस्तुत थी। उसने सहर्ष महर्षि के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया। यही नहीं, राजा के चले जाने पर वह बहुत लगन से वृद्ध महर्षि की सेवा करने लगी। आश्रम में जैसे जीवन लौट आया। देखते-देखते चारों ओर उसका यश फैल गया।

एक बार अश्विनीकुमार उस आश्रम में आ निकले। उन्होंने सुन्दर सुकन्या को देखा और उसका परिचय पाकर कहा, ‘‘अरे, तुम क्या इस आश्रम के योग्य हो। तुम जैसी सुन्दरी को तो किसी राजा से विवाह करना चाहिए था। यह सफेद बालों वाला और दन्तहीन मुख वाला तुम्हारा पति होने के योग्य नहीं है। सो तुम हम में से किसी का वरण कर जीवन को आनन्द से बिताओ।’’

सुकन्या अश्विनीकुमारों को पहचानती थी। बोली, ‘‘भारतीय ललनाएँ रूप का नहीं, हृदय का व्यापार करती हैं। परिणय ही पति-पत्नी के हृदय को बाँधने वाला है। पति की सेवा मेरा परम धर्म है।’’

अश्विनीकुमार तो परीक्षा लेने आए थे। राजकुमारी की बातें सुनकर उन्हें बहुत सन्तोष हुआ। वे देवताओं के वैद्य थे। उन्होंने च्यवन के साथ पुष्कर में गोता मारा। बाहर निकलते ही सबने

आश्चर्य से देखा—दो के स्थान पर तीन अश्विनीकुमार थे। एक जैसे सुन्दर और एक जैसे सुहावने। लेकिन सुकन्या तो पतिव्रता थी। अपने पति को पहचानने में उसे देर नहीं लगी। आश्रम

में चारों ओर आनन्द बहने लगा।

च्यवन ऋषि ने अश्विनीकुमारों के इस उपकार को गद्गद् होकर स्वीकार किया और उन्होंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि इस उपकार के बदले में अश्विनीकुमार को सोमरस पीने का अधिकारी बनाऊँगा।

उस समय तक देवता अश्विनीकुमारों को अपने समान सोमरस का अधिकारी नहीं मानते थे। राजा शर्यात ने यह समाचार सुना तो वह आश्रम में आए। महर्षि के रूप को देखकर उन्हें बड़ा सुख हुआ और महर्षि ने उनसे विराट यज्ञ का आयोजन करने को कहा। उस यज्ञ के अन्त में उन्होंने अश्विनीकुमारों को दूसरे देवताओं के साथ सोमरस पीने के लिए निमन्त्रित किया। यह देखकर इन्द्र क्रुद्ध हो उठा। उसने च्यवन ऋषि को चुनौती दी। लेकिन च्यवन ऋषि ने भरे मण्डप में इन्द्र के सामने ही गम्भीर स्वर में कहा, "हे देवतागण, अश्विनीकुमार आयुर्वेद के पण्डित हैं। वे शरीर की रक्षा करते हैं। ऐसे जगत का कल्याण करने वाले प्राणाचार्यों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। शरीर ही धर्म का साधन है। शरीर खराब हो जाता है तो धर्म नहीं ठहर सकता। अश्विनीकुमारों ने अनेक ऋषियों, अनेक नारियों, अनेक राजाओं, देवताओं, दैत्यों, महर्षियों के प्राणों की बार-बार रक्षा की है। हे देवाधिदेव, देवताओं और मानवों का सहयोग आवश्यक है। मैं चाहता हूँ कि आज से संसार आयुर्वेद के महत्त्व को समझे। मैं दोनों भाइयों को सोमरस पिलाऊँगा। सामर्थ्य हो तो कोई मुझे रोके।"

इतना कहकर उन्होंने सोमरस का पात्र अश्विनीकुमारों के सामने रखा। सभा में निस्तब्धता छा गई और इन्द्र ने वज्र प्रहार करने के लिए भुजा उठाई कि सहसा वह वहीं बीच में ही ठहर

गई और एक महा भयंकर दानव इन्द्र को खाने के लिए आगे बढ़ा। अब तो इन्द्र काँपने लगा। उसने महर्षि च्यवन की नाना प्रकार से प्रार्थना की, ''हे महर्षि, आपकी बात पूरी हो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है।''

महर्षि प्रसन्न हुए और अश्विनीकुमारों ने सोमरस का पान किया। जनता ने आश्चर्य से चकित होकर च्यवन ऋषि के तप के प्रभाव को देखा और देखी सुकन्या के पातिव्रत्य धर्म की महिमा।

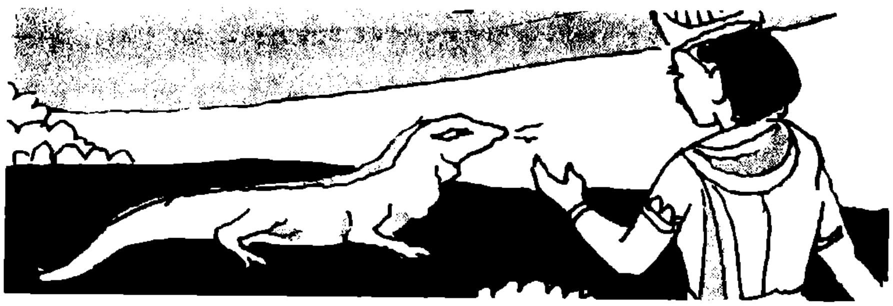

राजा नृग का उद्धार

एक बार यदु कुल के अनेक राजकुमार घूमने के लिए उपवन में गए। घूमते-घूमते उन्हें प्यास लग आई और वे एक कुँए पर पहुँचे। लेकिन वह कुआँ बड़ी दुर्दशा में था। पानी निकालने के प्रयत्न में एक राजकुमार उसमें गिर पड़े। अन्दर उन्होंने एक भीमकाय गिरगिट को देखा। उसे वहाँ देखकर उनके मन में करुणा पैदा हुई और उसे बाहर निकालने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु निकाल नहीं सके। निराश होकर वह भगवान श्रीकृष्ण के पास आए। श्रीकृष्ण जैसे सब कुछ जानते हों वह तुरन्त कुएँ पर पहुँचे और बड़ी आसानी से उसे बाहर निकाल लिया। लेकिन यह क्या, उनके कर कमलों का स्पर्श पाते ही वह गिरगिट एक देवता के रूप में परिणत हो गया। उसका यह रूपान्तर देखकर श्रीकृष्ण ने पूछा, ''तुम कौन हो ? किस कर्म के फल से तुम्हें इस योनि में आना पड़ा। अपना परिचय देकर हमारा कौतूहल दूर करो।''

भगवान के इस प्रकार पूछने पर उसने कहा, ''प्रभो ! मैं इक्ष्वाकु का पुत्र राजा नृग हूँ। मैंने अपने समय में अनेक दुधारू कपिला गाएँ दान में दी थीं। मैंने उनके सींगों को सोने से मढ़ दिया था। उनको कीमती वस्त्रों और हारों से सजाया था और

मैं जिन ब्राह्मणों को दान दिया करता था वे शील-सम्पन्न, दंभ रहित और विद्या दान करने वाले होते थे। लेकिन प्रभु, एक दिन ऐसा हुआ कि एक तपस्वी की दान में गई हुई गाय छूटकर मेरी गायों में आ मिली। मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं

था। अनजाने ही मैंने वह गाय अपने नियम के अनुसार किसी दूसरे ब्राह्मण को दान कर दी। जिस समय वह ब्राह्मण उस गाय को ले जा रहा था तभी उसका पहला स्वामी वहाँ आ पहुँचा और बोला, "यह गाय तो मेरी है।"

दान ले जाने वाले ने भी कहा, "राजा नृग ने यह गाय मुझे अभी दान में दी है, इसलिए यह मेरी है।"

इसके बाद उन दोनों में वाद-विवाद आरम्भ हुआ। झगड़ते हुए दोनों मेरे पास आए। भगवन्, उन दोनों की बात सुनकर मैं बहुत दुखी हुआ। उस धर्म-संकट में पड़कर मैंने उनसे कहा, "इस गाय के बदले में मैं आपको और बहुत-सी गाय दूँगा। आप यह गाय मुझे दे दीजिए। मुझ से अनजाने ही यह अपराध हो गया। मैं तो आपका सेवक हूँ। कृपा करके मुझे इस संकट से उबार लीजिए। लेकिन गाय का पहला स्वामी किसी भी शर्त पर नहीं माना और असंतुष्ट होकर वहाँ से चला आया।

"हे भगवन, आखिर एक दिन मेरी आयु समाप्त हुई तो यमराज के दूत मुझे यमराज के सम्मुख ले गए। उन्होंने मुझ से पूछा, 'राजन! तुम पहले पुण्य का फल भोगना चाहते हो या पाप का ? तुम्हारे दान और धर्म के फलस्वरूप तुम्हें ऐसा तेजस्वी लोक प्राप्त होने वाला है जिसकी लालसा बड़े-बड़े ऋषि-मुनि करते रहते हैं ?'

मैंने उत्तर दिया, "धर्मराज ! मैं पहले अपने पाप का फल ही भोग लेना चाहता हूँ।"

"बस, उसी क्षण मैं वहाँ से विदा हुआ और गिरगिट बन गया। प्रभो ! मैं तपस्वी ब्राह्मणों का सेवक हूँ और आपका भक्त हूँ। मेरे मन में आपके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा थी। आपकी कृपा से मेरे पूर्वजन्म की स्मृति नष्ट नहीं हुई थी। बड़े-बड़े

योगीश्वर अपने निर्मल हृदय में आपका ध्यान करते रहते हैं लेकिन आप अनायास ही मेरे नेत्रों के सामने कैसे आ गए? सब कुछ होने पर भी मैं बहुत व्यसनों और दुःखदायी कर्मों में फँसा हुआ था। आपका दर्शन तो तभी होता है जब संसार के बन्धन से छूटने का समय आ जाता है। हे प्रभो! अब आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए कि मेरा चित्त सदा आपके चरण-कमलों में ही लगा रहे। मैं बार-बार आपको नमस्कार करता हूँ।''

राजा नृग ने इस प्रकार विनय कर भगवान की परिक्रमा की और उनके चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया। फिर उनकी आज्ञा पाकर वह विमान पर सवार हुए और स्वर्ग को चले गए।

वहाँ पर उपस्थित भगवान श्रीकृष्ण के सभी कुटुम्बी जन यह देखकर बहुत ही चकित और प्रभावित हुए। उनको इस प्रकार विस्मित हुआ देखकर श्रीकृष्ण ने उनसे कहा, ''अग्नि के समान ऐसे तेजस्वी पुरुष भी पराये धन को नहीं पचा सकते। फिर अभिमानी राजाओं की क्या हस्ती है जो वे इस पाप से मुक्त हो सकें। मैं हलाहल विष को विष नहीं समझता चूँकि उसकी चिकित्सा हो सकती है परन्तु दूसरों की सम्पत्ति को पचा लेने की शक्ति इस धरती के किसी भी प्राणी में नहीं है। विष खा लेने से केवल उसी प्राणी का नाश होता है जो विष खाता है लेकिन दूसरे के धन का हरण करने से जो अग्नि पैदा होती है वह सारे कुल को, समाज को, जाति को, समूल नष्ट कर देती है। जिन उदार हृदय और बहु कुटुम्बी लोगों की सम्पत्ति छीन ली जाती है, उनके रोने पर, उनके आँसुओं की बूँदों से इस धरती के जितने धूलि कण भीगते हैं उतने वर्षों तक धन हरण करने वाले और उसके वंशजों को नरक का दुख भोगना पड़ता है। अभी आप लोगों ने राजा नृग को देखा। उन्होंने

अनजाने ही यह अपराध किया था जिसके फलस्वरूप अनेक वर्षों तक उन्हें गिरगिट बनकर इस अंधे कुएँ में रहना पड़ा। आप अब भी समझ सकते हैं–जो जानबूझ कर दूसरों का धन छीनते हैं, उनकी क्या गति होती होगी।''

इस प्रकार श्रीकृष्ण के वचन सुन कर यदुवंश के राजकुमारों का मन निर्मल हो गया और वे राजा नृग को मन ही मन प्रणाम करते हुए अपने-अपने घरों को लौट गए।

सुकर्मी मनुष्य

एक दिन महाराज नरवाहन दत्त महारानी अलंकारवती के भवन में बैठे हुए थे। उसी समय उन्होंने बाहर नगाड़ों की आवाज़ सुनी। उन्हें आश्चर्य हुआ और सेनापति हरिशिख से कहा, ''इस समय नगाड़े क्यों बज रहे हैं ? पता तो लगाओ।''

सेनापति तुरन्त बाहर गए और कुछ देर बाद लौटकर कहा, ''इस नगरी में रुद्र नाम का एक वैश्य रहता है। व्यापार करने की इच्छा से वह सुवर्ण द्वीप गया था। वहाँ उसने बहुत-सा धन इकट्ठा किया और फिर वापस लौट पड़ा। मार्ग में अचानक उसका जहाज़ टूट गया और उसी के साथ उसकी सारी सम्पत्ति भी नष्ट हो गई। बेचारा किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर अकेला ही घर लौटा। अभी छह दिन पहले ही वह आया था, लेकिन आज अचानक अपने बाग में उसे बड़ा भारी खज़ाना गड़ा हुआ मिल गया। वह तुरन्त वत्सराज उदयन के पास पहुँचा और सब हाल बताकर निवेदन किया, ''महाराज, यह धन राज्य का है इसे आप स्वीकार करें। किन्तु वत्सराज ने वह धन उसी को लौटा दिया। इसी प्रसन्नता के कारण वह वणिक पुत्र नगाड़े बजवा रहा है।''

अपने पिता की इस उदारता और धार्मिकता की कहानी

सुनकर महाराज नरवाहन दत्त बहुत विस्मित हुए। बोले, ''विधाता क्यों तो किसी का धन लेता है और क्यों फिर दुबारा दे देता है।''

यह सुनकर गोमुख ने कहा, ''सचमुच विधाता की लीला बड़ी विचित्र है। इस सम्बन्ध में मैं आपको एक और कथा सुनाता हूँ।''

''प्राचीन काल में हर्षपुर नाम का एक नगर था। वहाँ हर्षवर्मा नाम का राजा राज्य करता था। उसके राज्य में एक बहुत ही कुलीन, धार्मिक और अत्यन्त धनी वैश्य रहता था। उसका नाम समुद्रशूर था। दूर-दूर के द्वीपों में उसका व्यापार फैला हुआ था। समय-समय पर वह स्वयं भी व्यापार करने के लिए इन द्वीपों में जाया करता था। एक बार वह व्यापार करने के लिए सुवर्ण द्वीप की ओर जा रहा था कि समुद्र में उसका जहाज़ एक विशाल मछली से टकरा गया। वह मछली इतनी ताकतवर थी कि जहाज़ के टुकड़े-टुकड़े हो गए। सब कुछ डूब गया। लेकिन समुद्रशूर तैरना जानता था, इसीलिए वह तैरता हुआ किनारे की टोह में चल पड़ा। तैरते-तैरते उसने देखा कि एक शव जा रहा है। वह उसी पर चढ़कर बैठ गया और धीरे-धीरे किनारे पर आ लगा। वहाँ आकर उसने देखा कि उस शव की पीठ में एक वस्त्र लिपटा हुआ है। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह धोती थी। उसने धोती को खोलकर देखा तो उसमें रत्नों की एक कण्ठी जगमगा रही थी। समुद्रशूर वहाँ से चल पड़ा और घूमता-घामता एक नगर में पहुँचा। उस नगर का नाम कलशपुर था और उसके बाहर एक सुन्दर मन्दिर बना हुआ था। समुद्रशूर बेहद थक गया था। मन्दिर में बैठते ही उसे नींद आ गई। वह सो गया। उसी समय अचानक राज्य के कुछ सिपाही उधर आ निकले। उन्होंने सोते

हुए समुद्रशूर के हाथ में वह रत्नकण्ठी देखी। उसे देखकर वे आपस में चर्चा करने लगे। एक ने कहा, ''अरे, यह कण्ठी तो देखो।''

दूसरा और पास आकर बोला, ''अरे कण्ठी तो राजकुमारी चक्रसेना की है।''

तीसरे ने कहा, ''हो न हो, इसी ने राजकुमारी के गले से इस कण्ठी को चुराया है।''

चौथा बोला, ''तब तो इसे पकड़कर राजा के पास ले चलना चाहिए।''

उन्होंने समुद्रशूर को जगाया और उसे बन्दी बनाकर राजा के पास ले गए। राजा ने समुद्रशूर से कहा, ''तुम्हें यह कण्ठी कहाँ से मिली ?''

समुद्रशूर ने जो कुछ उसके साथ बीता था, सब कह सुनाया। लेकिन राजा को विश्वास नहीं हुआ। उसने समस्त सभासदों को वह कण्ठी दिखाई और कहा, ''यह राजकुमारी चक्रसेना की कण्ठी है। यह जो कुछ कहता है, बिलकुल झूठ है।''

''ठीक इसी समय आकाश से झपट्टा मारता हुआ एक गिद्ध वहाँ आया और उस कण्ठी को छीनकर उड़ गया। यह देखकर समुद्रशूर बहुत दुःखी हुआ और वह आर्त्त स्वर में भगवान शिव को पुकारने लगा। राजा बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने आज्ञा दी कि इस वणिक को मार दिया जाय।

आश्चर्य का बात, उसी समय आकाशवाणी हुई, ''हे राजन्! इसे मत मारो। यह चोर नहीं है। यह हर्षपुर का रहने वाला व्यापारी समुद्रशूर है। इसने राजकुमारी की कण्ठी नहीं चुराई। जिसने चुराई थी वह राजपुरुषों के डर से रात को समुद्र में डूबकर मर गया। उस चोर की पीठ से इसे यह कण्ठी मिली है। इस धार्मिक व्यापारी को धन देकर मुक्त कर दो।''

यह आकाशवाणी सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने समुद्रशूर से क्षमा माँगते हुए उसे बहुत-सा धन दिया।

।न लेकर समुद्रशूर अपने देश को लौट चला। समुद्र पार करने के बाद जब वह एक वन में पहुँचा तो रात हो गई। उसके सब साथी सो गए लेकिन वह जागता रहा। तभी चोरों ने उनके दल पर आक्रमण किया, लेकिन समुद्रशूर चुपचाप पास के एक बरगद के पेड़ पर चढ़ गया। सवेरा हुआ तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। उसके सामने गिद्ध का घोंसला था और उसमें वही रत्नों की कण्ठी पड़ी हुई थी। समद्रशूर बहुत प्रसन्न हुआ। सब रत्न बटोर कर वह नीचे उतरा और अपने नगर हर्षपुर लौट आया। उसके बाद वह सुखपूर्वक रहने लगा। इस प्रकार हे राजन, जो सुकर्मी मनुष्य हैं, वे अन्त में सुख ही पाते हैं।"

भोगलक्ष्मी

हस्तिनापुर नगर में चमरवाल नाम का राजा राज्य करता था। उसके पास बड़ा भारी खज़ाना, सेना और अनेक किले थे। उसके वंश के समर बल आदि दूसरे पाँच राजाओं ने मिलकर विचार किया कि यह चमरवाल हम सबको एक-एक करके हानि पहुँचाता है, क्यों न हम सब मिलकर इसे जीत लें।

यह सलाह करके वे पाँचों यात्रा का शुभ लग्न पूछने के लिए ज्योतिषी के पास पहुँचे। उसने शुभ लग्न के साथ अपशकुन भी देख उनसे कहा, ''इस वर्ष तो कोई अच्छी लग्न नहीं है, यदि तुम अशुभ लग्न में चढ़ाई करोगे तो तुम्हारी हार होगी। पर तुम लोग चमरवाल की सम्पत्ति से ईर्ष्या क्यों करते हो ? लक्ष्मी का फल है उसका उपभोग, सो वह आप लोगों को उससे भी अधिक प्राप्त है। क्या आप लोगों ने इस सम्बन्ध में दो वैश्यों की कथा नहीं सुनी ?''

राजा बोले, ''नहीं। आप सुनाइए।''

ज्योतिषी ने कहा, ''सुनो। प्राचीन काल में कौतुकपुर नाम के नगर में बहुसुवर्ण नाम का एक राजा था। यशोवर्मा नाम का एक क्षत्रिय कुमार उसका सेवक था। दानशील होते हुए भी वह राजा उसको कुछ नहीं देता था। जब कभी वह राजा

से माँगता था तो वह कह देता, 'मैं तो तुम्हें देना चाहता हूँ किन्तु सूर्य भगवान देने नहीं देते। मैं क्या करूँ।'

एक दिन सूर्यग्रहण के समय उस क्षत्रिय कुमार ने राजा से कहा, "आज तो सूर्य भगवान को राहु ने पकड़ रखा है,

इसलिए आप जो कुछ मुझे देना चाहते हैं वह अभी दे दीजिए।"

यह बात सुनकर राजा बहुत हँसा और उसने वस्त्र, सोना आदि बहुत कुछ उस युवक को दिया। कुछ ही दिनों में यशोवर्मा ने वह सब धन खा-पी लिया। लेकिन उसके बाद राजा ने उसे कुछ भी नहीं दिया। यही नहीं, इसी बीच में उसकी पत्नी भी मर गई। वह बहुत दुःखी हुआ, और अन्त में अपने जीवन को निरर्थक मानकर देवी के सामने पहुँचा। वह अपना शरीर छोड़कर इच्छित वर पाना चाहता था। इसलिए विन्ध्यवासिनी के मन्दिर में निराहार रहकर उसने बड़ा कठोर तप किया। उसके तप से प्रसन्न होकर देवी स्वप्न में दर्शन देने आई और बोली, "हे पुत्र ! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम अर्थलक्ष्मी चाहते हो या भोगलक्ष्मी ?"

यह सुनकर यशोवर्मा ने देवी से कहा, "माता, मैं इन दोनों में भेद नहीं जानता।"

देवी बोली, "तुम्हारे नगर में भोगवर्मा और अर्थवर्मा नाम के दो वैश्य रहते हैं। उनकी लक्ष्मी को जाकर देखो। उन दोनों में से जो भी तुम्हें अच्छी लगे, वही मुझसे माँग लेना।"

प्रातःकाल जागते ही यशोवर्मा अपने कौतुकपुर नगर में गया। वहाँ वह पहले अर्थवर्मा के घर में पहुँचा। उसके घर में अनन्त स्वर्ण और रत्न आदि थे। अर्थवर्मा ने उसका बड़ा सत्कार किया और समय पर दोनों भोजन करने के लिए बैठे। यद्यपि अर्थवर्मा ने बहुत थोड़ा खाया था, किन्तु फिर भी और दिनों की अपेक्षा अधिक ही खाया। यशोवर्मा ने उससे पूछा, "सेठ जी, क्या बात है? आपने बहुत कम खाया है।"

अर्थवर्मा ने उत्तर दिया, "मैंने आज तुम्हारे अनुरोध से कुछ अधिक ही खा लिया। मैं तो हमेशा सत्तू ही खाता हूँ। वह भी

॥॥ ॥॥ाग्नि वाले पेट में नहीं पचता।"

ात्रि के समय अर्थवर्मा ने यशोवर्मा के लिए दूध और भात ॥॥ाया। स्वयं केवल एक तोला दूध लिया। जब वे दोनों सो ॥॥ तो यशोवर्मा ने स्वप्न में देखा कि कुछ भयंकर आकृति के मनुष्य अर्थवर्मा को फटकार कर कह रहे हैं कि आज तूने अधिक क्यों खाया ? ऐसा कहते हुए उन्होंने अर्थवर्मा को खूब पीटा और उसके पेट से अधिक खाया हुआ धन बाहर खींच लिया।

वह स्वप्न देखकर ज्योंही यशोवर्मा जागा, त्योंही उसने देखा कि अर्थवर्मा के पेट में दर्द हो रहा है और वह वमन कर रहा है। यह देखकर यशोवर्मा ने सोचा कि ऐसे जीवन को धिक्कार है और ऐसी सम्पत्ति को भी धिक्कार है।

अगले दिन वह भोगवर्मा के पास पहुँचा। उसने भी उसका खूब आदर-सत्कार किया और भोजन के लिए आमन्त्रित किया। यशोवर्मा ने देखा कि भोगवर्मा अपना व्यापार उचित रीति से करता है। एक व्यक्ति से सामग्री लेकर दूसरे को देता है और बिना किसी पूँजी के धन पैदा कर रहा है। फिर उसने अपनी पत्नी के लिए खाने-पीने की सामग्री खरीदकर भेज दी। तभी भोगवर्मा का एक मित्र उसे अपने यहाँ प्रीतिभोज पर ले गया। यशोवर्मा भी उसके साथ गया। शाम को घर आकर दोनों ने फिर खूब खाया-पीया। सोते समय यशोवर्मा को बातों ही बातों में पता चला कि कल खाने के लिए कुछ भी नहीं है। रात को स्वप्न में उसने देखा कि कुछ आदमी दूसरे आदमियों को पीट रहे हैं और कह रहे हैं कि तुमने भोगवर्मा के लिए कल के भोजन का प्रबन्ध क्यों नहीं किया ? दूसरों ने उत्तर दिया, "हमसे अपराध हुआ, क्षमा कीजिए। कल से फिर ऐसा न

होगा।''

जब यशोवर्मा की आँख खुली, तो उसने सोचा, यही लक्ष्मी उत्तम है। विदा होकर वह फिर विन्ध्यवासिनी के मन्दिर में तप करने के लिए पहुँचा। उसके कठोर तप से प्रसन्न होकर देवी फिर प्रकट हुई। तब उसने भोगलक्ष्मी को अपने लिए माँग लिया।

सो इस प्रकार भोग के योग्य लक्ष्मी थोड़ी होने पर भी अच्छी होती है और भोग-रहित लक्ष्मी अधिक होने पर भी अच्छी नहीं है। इसलिए आप लोग राजा चमरवाल की सम्पत्ति की क्यों इच्छा करते हैं ?''

पर ज्योतिषी के मना करने पर भी वे पाँचों नहीं माने और उन्होंने चमरवाल पर आक्रमण कर ही दिया। समाचार पाकर राजा चमरवाल ने भी शिव की पूजा की और युद्ध के लिए उतर पड़ा। उस घमासान युद्ध में अन्त में चमरवाल की विजय हुई, विजय में पाँचों राजाओं की रानियाँ तथा अपार सम्पत्ति उसे मिली। इस प्रकार बहुत से शत्रुओं को एक पौरुष-सम्पन्न व्यक्ति युद्ध में जीत लेता है।

□□□

बाल-साहित्य

देश-विदेश की सचित्र लोककथाएं

पड़ोसी देशों की लोककथाएं
पंजाब की लोककथाएं
हरियाणा की लोककथाएं (पुरस्कृत)
हिमाचल की लोककथाएं
राजस्थान की लोककथाएं
मध्यप्रदेश की लोककथाएं
उत्तर प्रदेश की लोककथाएं
जापान की लोककथाएं
अफ्रीका की लोककथाएं
गुजरात की लोककथाएं
बिहार की लोककथाएं
असम की लोककथाएं
बंगाल की लोककथाएं (पुरस्कृत)
केरल की लोककथाएं

प्रेमचन्द की सरल, सचित्र बाल कहानियां

बूढ़ी काकी
बड़े घर की बेटी
सुजान भगत
परीक्षा
शतरंज के खिलाड़ी
दो बैलों की कथा
मां की ममता
शिकारी राजकुमार
गुल्ली-डण्डा
रानी सारंधा
नमक का दरोग़ा
रामलीला
पंच परमेश्वर
मन्दिर
ईद का त्यौहार
सब से बड़ा तीर्थ
कुत्ते की कहानी
मेरी कहानी
रामकथा
जंगल की कहानियां

रवीन्द्रनाथ टैगोर की सरल बाल-कहानियां

भोला राजा
काबुलीवाला
पारसमणि
मास्टरजी
तोते की कहानी
राजा का न्याय

राजपाल

ISBN 81-7028-475-9
9 788170 284758